SWAR SINDHU: NATIONAL PEER-REVIEWED/REFEREED JOURNAL OF MUSIC
A UGC CARE LISTED JOURNAL
ISSN 2320-7175 (O) | VOLUME 12, ISSUE 03, DECEMBER, 2024
http://swarsindhu.pratibha-spandan.org

भारतीय संगीत की गायन शैलियां

KARUNA MAJOTRA
Lecturer, Govt. College for Women, Udhampur, Jammu

सारांश
भारतीय संगीत के गर्भ से अनेक अमूल्य निधियाँ निकली हैं। प्राचीन काल से लेकर आधुनिक काल तक संगीत की विधाओं रूपी रत्न संगीत की दुनिया को आलोकित करते रहे हैं। इसके अन्तर्गत सबसे प्राचीन विधा 'गायन' की विभिन्न शैलियों ने संगीत की इस शाखा को समृद्ध करने का महान कार्य किया है। गायन शैलियों की संचित सम्पदा समय के साथ इस भूमि के संगीत के क्रमिक विकास, परिवर्तन और संगीतात्मक विशेषताओं की कहानी है, जिसके अध्ययन से हमें एक समृद्ध एवं व्यवस्थित परम्परा का ज्ञान होता है।
मुख्य शब्द: *संगीत, गायन शैली, ख्याल, ध्रुपद, ग़ज़ल घराना।*

भूमिका

भारतीय संगीत का विकास एक लंबे इतिहास का प्रतिनिधित्व करता है। आज उपलब्ध भारतीय संगीत कई युगों की गायन शैलियों पर आधारित है। विभिन्न युगों की शैलियों ने हमारे भारतीय संगीत को बहुमुखी विकास प्रदान किया है। वैदिक काल से ही संगीत उस समय की जीवन शैली का हिस्सा बन गया था। इस काल के संगीत को सामवेद के माध्यम से देखा जा सकता है। साम से संबंधित वेद यानी सामवेद में गीतात्मक रचनाएँ हैं। ये रचनाएँ साम गायन का मुख्य आधार बनीं। उदत्त, अनुदात्त और स्वरित के प्रयोग के बाद वैदिक गायन में सात स्वर प्रचलित हो गये- क्रुष्ट, प्रथम, द्वितीया, तृतीया, चतुर्थ, मन्द्र और गति स्वार्य। वैदिक साहित्य में इनके नाम अभिनिहित, प्राश्लिष्ट, जात्य, क्षेत्र, पादवृत, तेरवञजन और तेरविराम हैं। सामगान के रूपों में आर्चिक और गान संहिता का नाम आता है, जिनमें क्रमशः गीत की रचना और बोल होते हैं। अति गायन के संदर्भ में यह स्पष्ट है कि यह समान विशेषताओं वाला तथा निश्चित नियमों का पालन करने वाला गीतों का समूह है। जब रागों का उदय नहीं हुआ था, तब उनके स्थान पर जातियां ही मूल-राग थीं। इनमें उत्पन्न हुए विकारों को ही रागों के जन्म का कारण माना जाता है। विद्वानों ने जातियों के दस लक्षणों से अवगत कराया है, जिनके नाम हैं - अंश, ग्रह, न्यास, अपन्यास, संन्यास, विन्यास, अलपत्य, बहुत्व, औडव, षाड़व। प्रबंध गायन शैली भी भारतीय संगीत की एक प्राचीन गायन शैली है। इतिहास पर नजर डालें तो पता चलता है कि राजपूत काल में संगीत दो धाराओं में बंटा हुआ था- उत्तर भारतीय संगीत और दक्षिण भारतीय संगीत। ग्यारहवीं शताब्दी में ही प्रबंध का विकास हुआ। जिसके दो रूप हैं- निबद्ध प्रबंध और अनिबद्ध प्रबंध। निबद्ध प्रबंध की गायन शैली जहां लय से बंधी हुई थी, वहीं अनिबद्ध प्रबंध को स्वतंत्र रूप से, यानी लय की परिधि से बाहर गाया जाता था। भारतीय संगीत ने परिवर्तन के कई चरण देखे हैं और संगीत के सागर से कई नए अनमोल मोती निकले और कई लुप्त हो गए। विकास की इसी श्रृंखला में ध्रुपद गायन का समय भी आया।

ध्रुपद

ध्रुपद गायन शैली वह विशिष्ट गायन शैली रही है, जिसकी रचना का आधार प्राचीन काल का वैदिक संगीत, भरत काल का ध्रवागीत और शारंगदेव काल का ध्रुव प्रबंध रहा है। मंदिरों और फिर राजदरबारों तक पहुंची इस अनूठी शैली की उत्पत्ति के बारे में हालांकि विद्वानों में कई मत हैं, लेकिन इसके प्रवर्तक, प्रचारक और उद्धारक के रूप में राजा मानसिंह तोमर की भूमिका सराहनीय रही है। समकालीन युग में ध्रुपद की चार बानियां प्रसिद्ध हुईं- गौबरहार बानी, खंडार बानी, डगर बानी और नौहर बानी। इन बानियों ने न केवल हमें ध्रुपद गायन की विशेषता से परिचित कराया बल्कि इसके आधार पर संबंधित घरानों का भी निर्माण हुआ, जिनमें दरभंगा घराना, डागर घराना, बेतिया घराना, विष्णुपुर घराना, आगरा घराना, ग्वालिपार घराना, दिल्ली घराना आदि शामिल हैं। वर्तमान कलाकारों में पंडित विदुर मल्लिक, पंडित अभय नारायण मलिक, पंडित रामकुमार मल्लिक, गुंदेचा बंधु, डॉ. इरा मुखर्जी, डॉ. मधु भट्ट तैलंग, पंडित फाल्गुनी मिश्रा, उस्ताद वासिफुद्दीन डागर, आदि प्रमुख नाम हैं।

राग भैरव : ध्रुपद गायन शैली में बंदिश इस प्रकार है :-

स्थाई : आदि मध्यांत जोगत जोगी शिव,

कनक विष अमियद विषभोगी शिव |

अंतरा : नाभि के कमल ते तीन मूरत भई,

भीन जाने सोच नरख भोगी शिव

धमार

धमार गायन की नींव राजा मानसिंह तोमर और नायक बैजू ने रखी थी। मूलतः इसका सम्बन्ध राधा-कृष्ण की होली-लीलाओं से है। ध्रुपद की तरह इसमें भी आलाप गाने की परम्परा है, जिसके बाद बंदिश गाई जाती है। इस गायन शैली के कई अन्य नाम भी हैं जैसे धमाल, धमार, धमारी आदि। धमार गायकी के गायन में श्री नारायण शास्त्री, उस्ताद बहराम खां, पंडित लक्ष्मण दास, मोहम्मद अली खां, आलम खां, डागर बंधु आदि कलाकारों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

राग मालकौंस: धमार गायन शैली में बंदिश इस प्रकार है:

स्थायी : सखी इक धूम मची ब्रज भूम,

होरी खेले मिल झुक झूम।

अंतरा : श्री ब्रज चन्द्र राधा नाचे,

नुपूर बाजत छन्ननन छूम।

ख्याल

ख्याल गायन शैली भारतीय संगीत की जितनी प्रसिद्ध और लोकप्रिय शैली है, उतनी ही व्यापक भी मानी जाती है। इसके दायरे में ध्रुपद, टप्पा, ठुमरी आदि कई अन्य शैलियों का समावेश आंशिक रूप से देखा जा सकता है। दरअसल ख्याल एक फारसी शब्द है जो कल्पना के अर्थ को समेटे हुए है और ख्याल गायन के माध्यम से आलाप, तान, खटका, कण आदि की मदद से किसी विशेष राग के नियमों का अनुकरण करके भावनाओं को व्यक्त किया जाता है। ख्याल गायन में छोटा ख्याल और बड़ा ख्याल गाया जाता है। बड़ा ख्याल में स्थायी का विस्तार विलम्बित लय में किया जाता है। ख्याल का विस्तार आलाप, बोल-आलाप, सरगम और तान से होता है। अधिकतर इसका गायन एकताल, तीनताल, तिलवाडाताल, झुमराताल या रूपकताल में होता है। बड़ा ख्याल को समाप्त करते समय तान को तीव्र लय में गाया जाता है। इसके बाद छोटा ख्याल शुरू होता है, जो ज्यादातर एकताल या तीनताल में होता है। ख्याल गायन की उत्पत्ति के बारे में विद्धानों का एकमत नहीं दिखता। कुछ लोग अमीर खुसरो को, कुछ सुल्तान हुसैन शर्की को और कुछ लोग सदारंग-अदारंग को इसका प्रवत्र्तक मानते हैं। अन्य गायन शैलियों की तरह ख्याल गायन के घरानों ने भी इस शैली को विकसित किया, जिनमें मुख्य रूप से ग्वालियर, किराना, आगरा, पटिपाला, जयपुर आदि घराने शामिल हैं।

राग देस में बंदिश इस प्रकार है :-

स्थाई : बादरवा बरसन लागे,

मोरे पिहरवा घर नहीं आये।

अंतरा : उमड़ -घुमड़ घन बूंदन बरसे

दादुर बोले मोरा जिया लरजे

पिया परदेसी अज हूँ न आये।

ठुमरी

हिंदुस्तानी संगीत के शास्त्रीय पक्ष के अंतर्गत विभिन्न भावों को अभिव्यक्त करने की शैली को ठुमरी गायन शैली कहते हैं। ठुमरी मुख्यतः दो प्रकार की होती है, जिन्हें अंग कहते हैं- पूरब अंग और पंजाब अंग। उत्तर भारत के पूर्वी क्षेत्र में, जिसमें बनारस, दरभंगा, पटना, गया आदि शामिल हैं। बोल बनाव की ठुमरी ने अपनी जगह बनाई और इसे पूरब अंग की ठुमरी कहा गया। पंजाब अंग की ठुमरी का श्रेय गायक अली बख्श खां को जाता है। उन्होंने पूर्व अंग को समझा और पंजाब के लोक गीतों को इस शैली के सांचे में ढाला और पंजाब अंग की ठुमरी का उदय हुआ। इस गायन परंपरा में गायकों की एक लंबी सूची है, जैसे- श्री राम कुमार मिश्र, राम कृष्ण मिश्र, मथुराजी मिश्र, बड़े रामदास मिश्र, पंडित छोटे रामदास मिश्र, दामोदर मिश्र, अनवरी बेगम, गौहर आन, गिरिजा देवी आदि।

ठुमरी गायन शैली में बंदिश इस प्रकर है :-

याद पिया की आये,

यै दुःख सहा न जाए राम, हाय राम

बैरी कोयलिया कुक सुनाये रे राम,

मुझ बिरहन का जियरा जलाये

हां प्रीत न जाए जगाये है राम,

बाली उमरिया सुनी रे साजरिया,

जौबन बीतों जाए, हाय राम

टप्पा

टप्पा गायन शैली पंजाब की सबसे प्रिय लोक गायन शैली है। नवाब असफउद्दौला के दरबारी गायक मियां गुलाम नबी शोरी ने इसे लोक शैली से शास्त्रीय गायन शैली में ले जाने का जिम्मा उठाया। टप्पा गायन शैली में ठेठ टप्पा तान का प्रयोग किया जाता है। पंजाबी ताल में, जिसे टप्पा का ठेका भी कहा जाता है, ताल के प्रत्येक चक्र में तान उत्पन्न करना और छोड़ना आवश्यक है। इन्हें प्रस्तुत करने के लिए नियमानुसार पहले आलाप को ठुमरी में गाया जाता है और फिर तीव्र लयबद्ध स्वर में गुंथे शब्दों का प्रयोग करते हुए इसे आगे बढ़ाया जाता है। पंजाबी ताल के अलावा मुरकी, तान, आलाप, मींड इसके सहायक तत्व हैं। इसे भैरवी, काफी, देश, खमाज, झिंझोटी आदि रागों में अधिक गाया जाता है। टप्पा गायन के कई वरिष्ठ गायक और गायिकाओं के नाम इस प्रकार हैं जैसे- उस्ताद निसार हुसैन खां, बड़े रामदाजी, सिद्धेश्वरी देवी, गिरिजा देवी, पंडित गणेश प्रसाद मिश्र, रसूलन बाई, राजन-साजन मिश्रा, गोपेश्वर बैनर्जी, हुसैन बख्श, तानरास खां आदि।

राग खमाज : टप्पा गायन शैली में बंदिश

स्थाई : चाल पहचानी ए मियाँ मै तो,

ते जींद डरत जानी मियाँ मै तो।

अंतरा : सुन पाया नादान से तेरे दुश्मन हो तमाम,

लाए मसल्बी में अपना तो हुआ काम तमाम।

तराना

मध्यकाल में उभरी और विकसित हुई तराना शैली तीव्र लय में गाई जाती है। अमीर खुसरो को इसका आविष्कारक माना जाता है। तराना की प्रवृत्तियों में कई बिंदुओं को रेखांकित किया जा सकता है, जैसे अर्थहीन अक्षरों से निर्मित होना, लय को अधिक महत्त्व देना। तीनताल,

एकताल, झपताल और आड़ा चैताल में बंधी यह गायन पद्धति छोटे ख्याल के बाद गाई जाती है। इसमें नोम, तोम, ततन, ना, दिर, दानी, देरे, तादानी, अली, यल्ली आदि शब्द शामिल हैं। पंडित कृष्णराव शंकर, उस्ताद अमीर खां, उस्ताद बड़े गुलाम अली खां और उनसे पहले उस्ताद मुश्ताक हुसैन खां तराना गायन में माहिर थे।

तराना गायन शैली में तराना के बोल इस प्रकार से है :-

ना दिर दिर ता नी ता दा नी दीम दीम ता ना ना ता दा रे ता दीरे ना

चतुरंग

चतुरंग अपने नाम को चार भागों के माध्यम से स्पष्ट करता है। चतुरंग गायन शैली में बंदिश के बोलों के साथ-साथ तराना के बोल, पखावज या तबले के बोल और सरगम गीत सम्मिलित हैं। द्रुत लय आधारित शैली होने के साथ-साथ इसमें भाव पक्ष की अपेक्षा कला पक्ष अधिक महत्वपूर्ण है।

चतुरंग गायन शैली में बंदिश के बोल इस प्रकार है :-

बंदिश के बोल : सखी बाजे पग पैंजनी

झन न न न न न न न न

बाजे मोहन पग पैंजनी

तराना के बोल : तननन, तीर धीर, धन न धन न न न

सरगम के बोल : सा सा नी नी ,धा धा पा पा, रे मा नि ध पा मा गा रे गा रे सा

पखावज के बोल : धा धा किर धा, धा धा किर धा, धा धा किर धा

कव्वाली

कव्वाली सूफी गायन की एक शैली है जिसका मुख्य उद्देश्य ईश्वर की आराधना माना जाता है। विदेशों से सूफी भारत की धरती पर आकर बस गए। सूफी परंपरा का संगीत धीरे-धीरे भारत में फैलने लगा, जिसके परिणामस्वरूप कव्वाली आम लोगों और राजदरबार दोनों के लिए आकर्षण का केंद्र बन गई। इस शैली के प्रदर्शन में कम से कम सात और अधिकतम चैदह कलाकार होते हैं। इसमें एक या दो कलाकार मुख्य कलाकार के रूप में दिखाई देते हैं और बाकी कलाकार सहायक के रूप में दिखाई देते हैं, जो उनके दोहे दोहराते हैं और ताली बजाकर उनका समर्थन करते हैं। कव्वाली में पल्टा, तान, जमजमा, बोल बांट आदि शामिल हैं। प्रमुख कव्वाली गायकों में स्वर्गीय उस्ताद नुसरत फतेह अली खां, अजीज़ मियां, उस्ताद राहत फतेह अली खां, फरीद अयाज़, वडाली-बंधु आदि शामिल हैं।

कव्वाली गायन की पंक्तियाँ इस प्रकार है :-

नित ख़ैर मंगा सोन्या मैं तेरी, दुआ न कोई होर मंगदी,

तेरे पैरां च आख़िर होवै मेरी, दुआ न कोई होर मंगदी।

ग़ज़ल

गायन शैलियों की श्रृंखला में ग़ज़ल गायन शैली जनसाधारण द्वारा स्वीकृत सर्वाधिक लोकप्रिय शैली है, जिसका संगीत के साथ-साथ साहित्य में भी समान महत्व है। ग़ज़ल अनेक भाषाओं में लिखी और गाई जाती है। चूँकि यह शैली अरबी-फारसी के क्षेत्र से भारतीय परिवेश में आई, किन्तु इसकी लोकप्रियता पर कभी कोई प्रभाव नहीं पड़ा। अरबी कविगण प्रायः अपने राजाओं की प्रशंसा में कसीदे लिखते थे, जिनका प्रारंभिक भाग प्रेम और श्रृंगार की भावनाओं से भरा होता था। फारसी कवियों ने कसीदों के इसी भाग को ग़ज़ल के रूप में स्वीकार किया।

फारसी ग़ज़ल की परम्परा जब उर्दू में आई, तो वह भारत के विभिन्न साहित्यिक केन्द्रों में विकसित हुई। प्रेम-प्रधान ग़ज़लें मुस्लिम बादशाहों के दरबारों में प्रचलित थीं, जिन्हें बाद में मौलाना हाली के प्रयासों से विषय-वस्तु और शिल्प में बदलाव लाकर आम लोगों के जीवन में उतारा गया। ग़ज़ल का अर्थ प्रेमी से बातचीत या संवाद के रूप में व्यक्त होता है या फिर इसमें विरह वेदना की भावना व्यक्त की जाती है, लेकिन समय के साथ इसके विषय का दायरा व्यापक होता गया और इसमें आम लोगों की वंचनाओं और समाज की विषमताओं का वर्णन किया जाने लगा। काफिया, लय, मिसरा, शेयर, मतला, मक्ता ग़ज़ल के मुख्य अंग हैं। ग़ज़ल गायकी की परंपरा निस्संदेह मुगल काल में खूब फली-फूली। हुमायूं, अकबर, जहांगीर, शाहजहां, मोहम्मद शाह रंगीला, बहादुर शाह जफ़र के काल में ग़ज़ल गायकी को अन्य संगीत धाराओं के साथ विकसित होने का अवसर मिला। इसका प्रभाव आधुनिक काल तक बना रहा। इसके विकास में जितना योगदान ग़ज़ल गायकों का है, उतना ही ग़ज़ल रचनाकारों का भी। इसे अपनी आवाज़ देने वाले कलाकारों में जद्दनबाई, मुमताज़ बेग़म, बेनजीर बाई, मल्लिका पुखराज, बेगम अख्तर, नूरजहां, आबिदा परवीन, कुंदनलाल सहगल, मन्ना डे, हेमंत कुमार, तलत महमूद, मोहम्मद रफी, भूपिंदर सिंह, जगजीत सिंह, चित्रा सिंह, पंकज उधास, तलत अज़ीज, आदि शामिल हैं।

उदाहरण के लिए ग़ज़ल की कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार है :-

स्थाई : उसने मुझे यूँ ख़ाक बना कर उड़ा दिया,

बस चाह लिया, याद किया और भुला दिया।

अंतरा : इक बार मेरे हाल पे वो क्या हुआ उदास,

लोगों ने बस इसी का फ़साना बना दिया।

होरी या होली

होरी या होली मूलतः फाल्गुन माह में या विशेष रूप से होली के त्यौहार पर गाई जाती है। ब्रज शैली की इस गायन शैली की उत्पत्ति धमार से मानी जा सकती है। इसमें ख्याल की तरह तान, आलाप, मुर्की, खटका का प्रयोग किया जाता है तथा इसमें त्रिताल, दीपचंदी, कहरवा आदि तालों का प्रयोग किया जाता है।

होरी या होली गीत इस प्रकर है :-

रंग डारूंगी नन्द के लालन पे,

हाँ रंग डारूंगी नन्द के लालन पे, रँग डारूंगी

साँवर रँग लाल कर द्इयों, मल गुलाल दोउ गालन पे,

रंग डारूंगी, रंग डारूंगी नन्द के लालन पे, रंग डारूंगी

नारी बनाई नचाई छोड़ियों, ढप मृदंग के तालन पे,

रंग डारूंगी, रंग डारूंगी नन्द के लालन पे, रंग डारूंगी रे...

भजन

भजन गायन किसी देवी-देवता की स्तुति में गाया जाने वाला गीत है, जो सुगम संगीत की श्रेणी में आता है। इसके लिए किसी विशेष राग और ताल का उपयोग करना आवश्यक नहीं है। आमतौर पर भजन सभी पूजा पद्धतियों या रीतियों में गाए जाते हैं। यहाँ शास्त्रीय संगीत का बंधन आवश्यक नहीं है। आमतौर पर भगवान या किसी देवता के गुणों के बारे में गीत गाना या प्रार्थना करना भजन की श्रेणी में आता है।

जगजीत सिंह द्वारा गाया गया प्रसिद्ध भजन इस प्रकार है :-

हे राम, हे राम,

जग में साचो तेरो नाम, हे राम, हे राम

तू ही माता, तू ही पिता है, तू ही माता,

तू ही पिता है, तू ही तो है,

राधा का श्याम, हे राम, हे राम

निष्कर्ष

अतः कहा जा सकता है कि भारतीय संगीत की गायन शैलियों की विविधता एक ओर इसकी लंबी और समृद्ध यात्रा को दर्शाती है, वहीं उनका आलोचनात्मक अध्ययन उनके कलात्मक सौंदर्य को उजागर करता है। वैदिक काल के सामगान और आधुनिक काल की विभिन्न गायन शैलियों के बीच संबंध इस तथ्य को प्रमाणित करता है कि भारतीय संगीत ने अपने विकास पथ पर भले ही अनेक उतार-चढ़ाव देखे हों, लेकिन प्राचीन विरासत को संजोने और नए को स्वीकारने और अपनाने का गुण ही इसके गौरव का कारण है।

सन्दर्भ

शर्मा, सत्यवती (1995), संगीत का समाज-शास्त्र, पंचशील प्रकाशन, जयपुर।
जोशी, उमेश (1987), भारतीच संगीत का इतिहास, मानसरोवर प्रकाशान महल, फीरोज़ाबाद।
तैलंग (डॉ.) मधु भट्ट (1995), ध्रुपद गायन परम्परा, जवाहर कला केन्द, जयपुर।
अस्थाना, (डॉ.) रोहिताश्व (1987), हिन्दी ग़ज़ल: उद्भव गौर विकास, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली